दर्पण झूठ न बोले

मार्टिन गार्डनर

लगता है, कुछ जानवर कभी सीख नहीं पाते कि दर्पण के प्रतिबिम्ब भ्रम हैं। उदाहरण के लिए, एक तोता अपने पिंजरे में पड़े परावर्ती खिलौनों में दिखने वाले दृश्यों को देख-देख लगातार मंत्रमुग्ध होता रहता है। वैसे तो यह जानना कि किसी पक्षी के दिमाग में क्या-कुछ चल-घट रहा है, एक टेढ़ी खीर है, फिर भी तोते का व्यवहार हमें बताता है कि तोता सोचता है कि उसके पिंजरे में एक बन्दा और ज़रूर है, जिसे वह देख रहा है। कुत्ते और बिल्लियाँ थोड़े ज़्यादा समझदार होते हैं। ज्यों ही वे भाँप लेते हैं कि इन बिम्बों में दम नहीं, वे शीशे से मुँह मोड़ लेते हैं। वनमानुष (चिम्पैंज़ी) भी जल्दी जान जाते हैं कि शीशे में दिखने वाली छायाएँ असल नहीं हैं, पर उनकी बुद्धिमत्ता उन्हें इस तरह दीख रहे के प्रति अत्यधिक जिज्ञासु बना देती है। एक वनमानुष अपने जेबी दर्पण से घण्टों खेलता रह सकता है। शीशे में देख-देख वह अपने को ही मुँह चिढ़ाता रहता है। वह आइने के ज़रिए अपने पीछे की चीज़ों का जायज़ा लेता है। वह गौर से देखता है कि कोई चीज़, बगैर आइने के, यूँ सीधे-सीधे देखने पर, कैसी दीखती है, और फिर उसकी

तुलना उसी से करता है, जब वह फिर से उसे आइने में देखता है।

इस किताब को पढ़ना शुरू करने के लिए इससे बेहतर तरीका और क्या हो सकता है कि आप एक दर्पण में अपने आपको चिम्पैंज़ी-मार्का उत्सुकता व आश्चर्य बोध के साथ निहारें! कल्पना करें कि किसी कमरे की पूरी की पूरी एक दीवार एक दर्पण से ढकी है। और आप उस विशाल दर्पण के सामने खड़े हैं, एकदम सीधे, उसी में देखते हुए। ऐसे में आपको सही में क्या दिखता है?

निस्सन्देह, आपके ठीक सामने, एकदम बेबाकी से आप ही की आँखों में झाँकती हुई आप ही की हूबहू छाया। हूबहू? एकदम नहीं। आपका चेहरा, हर चेहरे की तरह, अपनी दाईं और अपनी बाईं ओर एकदम एक-सरीखा नहीं है। आप अपनी माँग शायद बाईं ओर निकालते हैं। हो सकता है आपका एक कान या आपकी एक भौंह, उसकी अपनी संगिनी के मुकाबले हल्की-सी ऊँची हो, आपकी नाक एक ओर को हल्की-सी मुड़ी हुई दीखे, आपके एक गाल पर एक खरोंच या जन्मचिह्न हो। आप अगर थोड़ा गौर फर्माएँ तो जनाब, कुछ-न-कुछ बाँकपन अपने चेहरे पर शर्तिया मिलेगा आपको। सो आप जब गौर फर्माते हैं, तो देखते हैं कि आपके आरसी वाले जुड़वाँ के चेहरे पर आपके नाक-नयन-नक्श आपस-में पाला बदल चुके हैं - ये उस पाले में तो वह इस पाले में। आप अगर अपनी माँग बाईं ओर काढ़ते हैं तो वह पट्ठा दाहिनी ओर, और इसी तरह आपके सारे किए-धरे को आपका ये आइनाई भाई उलट कर रख देता है।

निस्सन्देह, ये उल्टा प्लान कमरे और उसमें मौजूद सभी चीज़ों पर भी लागू होता है। छोटी-से-छोटी बारीकियों समेत कमरा *वही* रहता है, पर अजब तरीके से *बदला-बदला* भी होता है। जैसा कि लुई कैरॅल की एलिस कहती है, आइने में ध्यान से देखने पर उसे कमरे की हर चीज़ 'परली ओर जाती' दिखाई पड़ी।

खैर, हर चीज़ नहीं। कुर्सियाँ जस-की-तस दिखाई पड़ती हैं, इसी तरह ज़्यादातर टेबलें और लैम्प भी। आप यदि आइने के सामने एक कप-प्लेट ले जाएँ तो वे किसी भी आम कप-प्लेट की भाँति दिखाई देते हैं। लेकिन घड़ी जो आप आइने के सामने ले गए, तो बात ही बदल जाएगी। उस पर लिखे सगरे-के-सगरे अंक 'घड़ी की दिशा' में नहीं, बल्कि 'घड़ी के उलट' जाते दिखेंगे। (दीवार-घड़ी के फलकों की इस दर्पणी उलट-पलट ने वैसे कई जासूसी उपन्यासों में अहम सुराग उपलब्ध कराए हैं।)

एक पुस्तक को अपने हाथों में ले उसे दर्पण दिखाइए ज़रा। यदि आप प्रतिबिम्ब से पर्याप्त दूरी पर हैं तो आपको पुस्तक में कोई बदलाव न दिखेगा। अब ज़रा दर्पण के एकदम नज़दीक आकर उसका शीर्षक पढ़ें तो आपको तुरन्त ही अक्षर 'विपरीत दिशा

में जाते' दिखेंगे। दरअसल, अपने प्रतिवर्ती रूप में अक्षरों को पढ़ना आसान नहीं होता। ज़रा याद कीजिए वो नज़ारा, जब एलिस आरसी वाले कमरे में दाखिल होने के तुरन्त बाद टेबल पर रखी एक किताब खोल, दुनिया की सबसे महान बकबकिया कविता रच डालती है।

एलिस इतनी चालाक तो थी ही कि ताड़ जाए कि दर्पण में प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्बन, ऐसा ही दिखेगा जैसे कुछ घटा ही न हो। "अरे ये तो आइना-किताब है, बिलकुल!" वह चिहुँकी। "और अगर मैं इसे फिर दर्पण दिखाऊँ तो सगरे अक्षर पहले जैसे सीधे-के-सीधे हो जाएँगे।"

छोटे बच्चे अक्सर उल्टे अक्षरों में लिखे सन्देशों का रहस्य जान पाने सम्बन्धी शीशों की इस विलक्षण योग्यता को देख-देख अचम्भित होते हैं। लेकिन वयस्क लोग ज़रा इस मज़े से अछूते रहे आते हैं। वे शीशे के इस गुण को इतनी बार देख चुके होते हैं कि अब उन्हें इसे लेकर कोई अचम्भा नहीं होता। उन्हें लगता है कि वे अब उसके बारे में बखूबी जान गए हैं। लेकिन क्या वाकई वे इस खेल को बखूबी समझ पाए हैं? क्या आपको यकीन है कि अब यह जादू आपकी समझ में आ चुका है?

मुझे ज़रा एक सीधे-सादे सवाल से आपको उलझा देने का मौका दीजिए। कोई दर्पण भला चीज़ों के केवल बाएँ और दाएँ फलकों को ही उल्टा-पुल्टा क्यों करता है? क्यों नहीं वह उन्हें ऊपर से नीचे को उल्टा-पल्टा करता? इस पर ज़रा गौर फर्माएँ जनाब। दर्पण की सतह जो एकदम सपाट और चिकनी होती है; उसके बाएँ और दाहिने बाजू उसके सिर-पैर से किसी मायने में अलग नहीं होते। वह अदेर ही आपके बाएँ पक्ष को आपकी दाहिनी ओर और आपके दाएँ पक्ष को आपकी बाईं ओर भेज देता है। तो ऐसे में यह सवाल उठता है कि क्यों नहीं वह आपके सिर और आपके पैरों की अदला-बदली कर देता? दर्पण में उलट दिख रही कोई भी लिखावट, दाएँ से बाएँ तो चलती है, लेकिन क्योंकर भला उसकी ऊपरी पंक्ति ऊपर, नीचे की पंक्ति नीचे ही रह जाती है; और पलट कर वे क्रमशः नीचे-ऊपर नहीं हो जातीं? अब चूँकि दर्पण सिर्फ दाएँ-बाएँ का फेर ही कर पाता है, सो अगर हम इसे घड़ी की दिशा में एक-चौथाई ही घुमाएँ तो ऐसे में क्या होगा भला? तब क्या यह मेरे मुँह को औन्धे-मुँह कर देगा? लेकिन हमें शर्तिया पता है कि ऐसा कुछ होगा नहीं। सो फिर दाएँ-बाएँ का यह मतवाला फेर क्यों भला? कोई भी दर्पण अपने कमरे को क्षैतिज रूप से तो उल्टा-पल्टा कर देता है, पर उसे ऊपर-नीचे नहीं कर पाता?

मुझे उम्मीद है कि इस तरह के सवालों से आप अपने आपको थोड़ा-बहुत उस अक्लमन्द बन्दर के नज़दीक पाने लगे होंगे जो एक टुइयाँ-से आइने

में अपनी छवि टुकुर-टुकुर देखता रहता है। ये सवाल वाकई सिर-फिराऊ सवाल हैं। अपने दोस्तों को भी इनके लपेटे में ले आइए। वे भी अपने-अपने सिर खुजाने लगेंगे। जवाब आपको मिलेंगे तो सही, लेकिन हकलाते-धकलाते, फुसफुसाते-बड़बड़ाते। एकदम साफ-साफ, बेलाग-सा कोई जवाब मिले तो आश्चर्य ही समझना उसे। शीशों को लेकर वयस्कों का रवैया उस अक्लमन्द बन्दर की तरह न होकर कुत्ते-बिल्लियों के जैसा रहता है। वे दर्पण में दिखने वाली छायाओं को निःशंक मान कर चलते हैं, बिना इस पर ज़रा भी गौर किए कि एक दर्पण भला असल में करता क्या है?

ऐसे दर्पण आराम से बनाए जा सकते हैं जो दाएँ को बायाँ, बाएँ को दायाँ नहीं करते, इससे मामला और भी पेचीदा हो चलता है। उदाहरण के लिए, बिना चौखटे वाले दो आयताकार आइनों को एक मेज़ पर चित्र एक में दिखाए गए तरीके के मुताबिक खड़ा करें। ध्यान रहे कि ये दर्पण आपस में 90 डिग्री का कोण (समकोण) बनाते हुए इस तरह रखे गए हों कि उनके किनारे अपनी समूची लम्बाई में एक-दूसरे को छूते रहें। अब ज़रा झुकिए और सीधे मुँह शीशों में झाँकिए। आपको अपने चेहरे का एक प्रतिबिम्ब नज़र आएगा। आपके चेहरे की छाया अगर ज़्यादा चौड़ी या कुछ ज़्यादा ही संकरी है तो आप शीशों को तब तक इधर-उधर करें जब तक कि आपका बिम्ब सामान्य न हो जाए। लेकिन फिर भी क्या वह सामान्य हुआ? अपनी दाहिनी आँख बन्द कीजिए (आँख मारो भई)। लेकिन ये क्या, शीशे में आपकी छाया की बाईं आँख – यानी कि आपकी दाहिनी आँख के ठीक सामने वाली आँख – दबने की बजाय उसकी दाहिनी आँख ही दबी मिलती है आपको। आपका बिम्ब एक 'सामान्य' दर्पणी बिम्ब न होकर इस हिसाब से 'सामान्य' है कि यह एक सच्ची, अ-प्रतिवर्तित छवि है। पहली

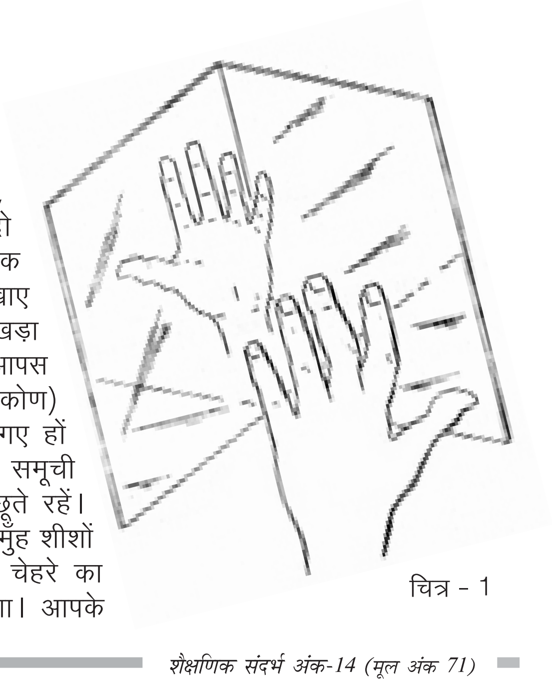

चित्र - 1

बार, आप अपने आपको *एक आइने में, ठीक* वैसे ही देख रहे हैं जैसे कि और बन्दे आपको देखा करते हैं।

ऐसा दर्पण गढ़ने का एक तरीका और है – प्रतिबिम्ब देने के लिहाज़ से अच्छी तरह से चमकाए गए धातु के एक पतले-दुबले पतरे को चित्र दो में दिखाए गए हिसाब से मोड़-माड़ कर। इस जुगाड़ू दर्पण में आपके चेहरे का एक अविकृत प्रतिबिम्ब जब आपको दिखेगा तो वह एकदम सीधा वाला (अ-प्रतिवर्तित) होगा। अपनी कोई एक आँख दबाकर या अपनी जीभ किसी एक तरफ बाहर निकाल कर आप इसकी पुष्टि कर सकते हैं। इस तरह के मुड़े हुए दर्पण से पुरातन ग्रीक अच्छी तरह वाकिफ थे। प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक, प्लेटो, अपने विमर्श *टिमीअस* में इसका हवाला हमें देते हैं। अपनी महान विज्ञान कविता *ऑन द नेचर ऑफ थिंग्स* में दर्पणों पर दिए गए चौथे खण्ड में रोमन कवि, *लुक्रेटियस* भी इसकी बात करते हैं।

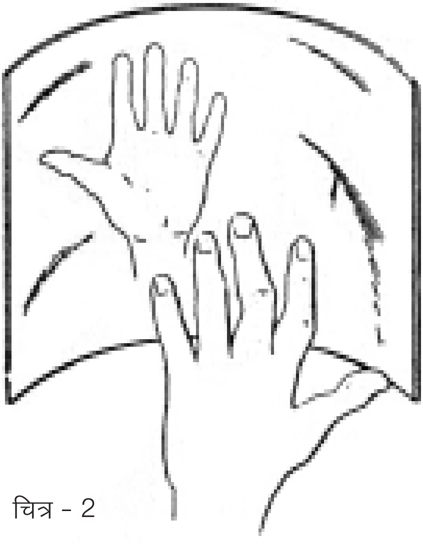

चित्र - 2

अब यदि आप इन अनूठे दर्पणों में से किसी एक को भी एक-चौथाई मोड़ दें तो उसमें बने आपके चेहरे का क्या हश्र होगा? आपकी छवि तुरन्त ही औंधी हो जाएगी (चित्र तीन)।

ऊपरी तौर से तो ऐसा लगता है जैसे, एक खास तरीके से रखे जाने पर इनमें से हरेक दर्पण, न तो दाएँ को बायाँ बनाता है, और न ही ऊपर को लाकर नीचे पटक देता है। लेकिन, वही दर्पण किसी और ढंग से रखे जाने पर सबकुछ औंधा-पौंधा कर देता है।

जैसा कि अपना वो चिम्पैंज़ी, दर्पण में अपनी छवियों को देख-देख निस्सन्देह यह सोच रहा होता है कि इस मामले में और भी पड़ताल किए जाने की ज़रूरत लगती है। इस शताब्दी की सबसे विस्मयकारी विज्ञान घटनाओं में से दो – भौतिकशास्त्रियों द्वारा समता संरक्षण के सिद्धान्त को खारिज किए जाने व जीव-वैज्ञानिकों द्वारा 'आनुवंशिक-संकेतों' को ढोने वाले अणु की कॉर्क-पेच संरचना खोज लिए जाने – का अन्तरंग सम्बन्ध दर्पणी उलट-

पलट से है। यानी कि हमारी यह पड़ताल निश्चित ही हमें समकालीन विज्ञान की ठेठ गहराइयों तक ले जाएगी, जिन्हें अभी तक ठीक से खँगाला नहीं गया है।

चित्र - 3

गॉर्डन जी. गैलप जूनियर द्वारा किया गया हालिया अनुसंधान दर्पणों के उपयोग के सहारे यह दर्शाता है कि चिम्पैंज़ी और ओरांगुटान में आत्म-चेतना होती है जो कि इस महान वानर परिवार के किसी स्तनधारी में नहीं होती। चिम्पैंज़ी तुरन्त ही यह भाँप जाते हैं कि दर्पण में दिख रहा कोई और चिम्पैंज़ी नहीं है। दर्पण का उपयोग वे अपने शरीर के उन हिस्सों को सँवारने के लिए करते हैं जो हिस्से उन्हें वर्ना यूँ नज़र नहीं आते। यदि किसी चिम्पैंज़ी को बेहोश कर उसके कान के इर्द-गिर्द एक गंधहीन, न जलने वाला लाल, चमकीला रंजक मल दिया जाए तो होश में वापस लौट आने पर उस चिम्पैंज़ी को अपने कान पर मला वह रंजक तब तक नहीं दिखाई पड़ता जब तक कि वह उसे किसी शीशे में न देख ले। और जैसे ही वह काँच में उसे देख लेता है, उसे रगड़ कर साफ-सूफ करने में जुट जाता है। संकेत-भाषा सीख चुके वानरों से जब यह पूछा जाता है कि आइने में वे किसे देख रहे हैं तो वे अपनी तरफ इशारा करते हुए जतलाते हैं कि खुद अपने आपको।

मार्टिन गार्डनरः बीसवीं सदी के गणितज्ञ एवं तर्कवादी। उन्होंने अपने लेखन से प्रयास किया कि गणितीय तार्किक पहेलियाँ गम्भीर चिन्तन एवं विषय को सीखने का ज़रिया बन सकें।

अँग्रेज़ी से अनुवादः मनोहर नोतानीः शिक्षा से स्नातकोत्तर इंजीनियर। पिछले 20 वर्षों से अनुवाद व सम्पादन उद्यम से स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं। उन्होंने प्रसिद्ध नाइजीरियाई लेखक चिनुआ अचेबे के उपन्यास *थिंग्स फॉल अपार्ट* के कुछ अंशों और अरविन्द अडिग के मॅन बुकर पुरस्कार प्राप्त उपन्यास *द वाइट टाइगर* का अधिकृत हिन्दी अनुवाद किया है। भोपाल में रहते हैं।

यह लेख मार्टिन गार्डनर की पुस्तक ‘द एम्बीडेक्सट्रस यूनिवर्स’ से साभार।